6435

तित्थयर

सत्रहवाँ वर्ष । अक्टूबर १९९३ । षष्ठ अंक

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYAN MANDIR
332009

जैन भवन

तित्थयर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १७ : अंक ६

अक्टूबर १९९३

☐

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

महाकवि इलंगो अडिगल कृत

प्राचीन तमिल महाकाव्य

सिलप्पदिकारम् १६३

त्रिषष्टि शलाका पुरुष

चरित्र १८१

संकलन १९०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या १९१

भगवान पार्श्वनाथ
नागराज मन्दिर, नागेरकोयेल

महाकवि इलंगो अडिगल कृत प्राचीन तमिल महाकाव्य सिलप्पदिकारम्

डॉ. रमणलाल ची. शाह
अनुवाद : भँवरलाल नाहटा

['सिलप्पदिकारम्' महाकाव्य के विषय में संकल्प तो सन् १९७० के अक्टूबर महीने में मद्रास में किया था, किन्तु वह आज १९९३ में फलीभूत होता है। १९७० में मद्रास युनिवर्सिटी के तमिल विभाग के अध्यक्ष डॉ. संजीवी के साथ प्रथम बार परिचय हुआ। तत्पश्चात् उनकी युनिवर्सिटी में तमिल महाग्रंथ तिरुक्कुरल के संबंध में अंग्रेजी में व्याख्यान देने के लिए तथा परिसंवाद में भाग लेने के लिए तीनेकबार निमंत्रण मिला। इस प्रकार परिचय गाढ़ होता गया। इन्होंने अखिल भारतीय तिरुक्कुरल संशोधन केन्द्र की स्थापना की और उसके उपाध्यक्ष पद पर मेरी नियुक्ति की। इस से तमिल साहित्य के अभ्यास हेतु मेरी दिलचस्पी बढ़ती गई। प्रथम बार हम मद्रास में मिले तब संध्या समय समुद्र तट पर घूमने गये थे वहाँ तिरुक्कुरल के कर्त्ता थिरुवल्लुवर की मूर्ति तो तुरंत पहचान सके, किन्तु हाथ में झांझर के साथ एक स्त्री की मूर्त्ति को मैं न पहचान सका। इन्होंने कहा कि हमारी नगरपालिका और सरकार को धन्यवाद है कि एक महाकाव्य की नायिका-मूर्ति यहाँ रखी है, यह मूर्ति कन्नगी की है। कन्नगी 'सिलप्पदिकारम्' महाकाव्य की नायिका है। फिर उन्होंने मुझे कहा कि लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन इस महाकाव्य के कर्त्ता जैन साधु कवि हैं। कन्नगी जैन है। इस महाकाव्य में जैन धर्म की बहुत सी बातें आती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण एक पात्र जैन साध्वी कवुंदी का है। सिलप्पदिकारम् एक उच्च कोटि का महाकाव्य है और तमिल में उसको बहुत सम्माननीय स्थान है।

डॉ० संजीवी की इस बात से मैं बहुत प्रभावित हुआ। फिर हम समुद्रतट की रेती (बालु) में बैठे और डा० संजीवी ने इस महाकाव्य का सारा कथानक विस्तार से कहा। जब कथानक पूरा हुआ तो मैंने डॉ० संजीवी से कहा कि इस विषय में मुझे गुजराती में लिखना है। उन्होंने मुझे इस के लिए साहित्य दिया। बम्बई आकर मैंने इसे पढ़कर थोड़ी तैयारी भी करली। डॉ० संजीवी ने दो तीन बार मुझे पत्र में इस विषय की याद भी दिलायी किन्तु लेखन किसी कारण विलम्ब में पड़ गया। अब अवकाश मिलने पर संकल्प पूर्ण हुआ जिससे मैं आनंदित हूँ। —लेखक]

तमिल भाषा का कोई भी साहित्य-रसिक व्यक्ति तमिल महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम्' के नाम से अपरिचित नहीं है। ईस्वी सन् की द्वितीय शताब्दी में या उससे पूर्व रचित यह महाकाव्य आज अठारह सौ वर्ष के पश्चात् भी अनेकों के लिए प्रेरक रहा है। तमिल भाषा के प्राचीन समय के तीन महाकवियों में 'तिरुक्कुरल' के कर्त्ता संत कवि थिरुवल्लुवर, तमिल रामायण के कर्त्ता संत कवि कंबन के साथ 'सिलप्पदिकारम्' के कर्त्ता संत कवि इलंगो अडिगल को गौरव पूर्ण स्थान संप्राप्त है।

संस्कृत भाषा में महाकाव्य की व्याख्या और परिपाटी के अनुसार कालिदास, माघ, भारवि आदि के रचित महाकाव्य मिलते हैं। उसी प्रकार प्राकृत, अपभ्रंश सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं में भी महाकाव्य लिखे गये हैं। तमिल भाषा में ऐसे जिन पाँच प्राचीन महाकाव्यों की गणना है उनमें 'सिलप्पदिकारम्' मुख्य है। 'सिलप्पदिकारम्' की ही कथा वस्तु को आगे बढ़ाता हुआ कवि चात्तनार कृत महाकाव्य 'मणिमेकलै' (मणिमेखला) है। इन दोनों महाकाव्यों को इसीलिए जुड़वाँ महाकाव्योंके रूप में पहचाना जाता है। अन्य तीन महाकाव्य 'चूड़ामणि', 'वलयापति', और 'कुंडलकेशि' हैं।

'सिलप्पदिकारम्' महाकाव्य के कवि हैं जैन साधु कवि इलंगो अडिगल। हिन्दु और बौद्ध धर्म के प्रति इतनी ही उदार दृष्टि धारक इस महाकविने अपने महाकाव्य में अनेक स्थानों में जैन धर्म के सिद्धान्तों का और जैन साधु-साध्वी तथा गृहस्थोंके आचार का निरूपण किया है। कवि के समय में दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का बहुत अधिक प्रचार था। हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म का अनुसरण करने वाली प्रजा का भी विशाल वर्ग था। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व की धार्मिक सहिष्णुता, उदारता और समन्वय दृष्टि का वह समय था। अतः कवि ने अपने समय के जन जीवन का समतोल निरूपण इस काव्य में किया है। इस महाकाव्य के नायक-नायिका कोवालन और उसकी पत्नी कन्नगी जैन है। फिर महाकाव्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र हैं जैन दिगम्बर साध्वी आर्याजी कवुंदी। इस महाकाव्य का कथानक कवि ने इतिहास में से लिया है, किन्तु इसका निरूपण अपनी कल्पना शक्ति द्वारा किया हैं। कवि की सर्जक प्रतिभा इतनी उत्कृष्ट है कि इतनी शताब्दियों के बाद भी लोग उसे याद करते हैं।

कवि का अपना जीवन-वृत्तान्त भी रोचक/रसपूर्ण है। इलंगो अडिगल यह कवि का मूल नाम नहीं, किन्तु लोक प्रसिद्धिमें आया हुआ अपर नाम जैसा

है। तमिल भाषा में इलंगो अर्थात् राजकुमार अथवा राजा का लघु भ्राता, अडिगल अर्थात् जैन साधु महाराज। कवि का अपना मूल नाम क्या था?— यह अज्ञात है। वे अपने 'इलंगो अडिगल' इस नाम से ही प्रसिद्ध रहे थे। जैनों में दीक्षा के अनंतर कितने ही साधु-साध्वी उनके सांसारिक सम्बन्ध से मामा महाराज, काका महाराज, माँ महाराज, बहिन महाराज आदि नाम से लोकों में विशेष प्रसिद्ध रहते हैं वैसे ही ये राजकुमार दीक्षा के बाद 'राजकुमार साधु महाराज' (इलंगो अडिगल) रूप में प्रख्यात हो गये थे। इनका राजकुमार व साधु अवस्था का नाम जानने में नहीं आता।

लगभग अठारह सौ वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में जो महान् राजा/महाराजा हुए हैं उनमें चेर वंश के जैन राजा नेडुन्चेरलादन का नाम भी प्रसिद्ध है। चेर राज्य अधिकतर दक्षिण भारत के पश्चिमी तटपर (आज का केराला) था और उनकी राजधानी वंजी थी।

नेडुन्चेरलादन राजा के दो पुत्र थे। दोनों राजकुमारों में कनिष्ठ राजकुमार अधिक तेजस्वी था। राजगद्दी सामान्यतः बड़े राजकुमार को मिलती है किन्तु एक दिन राज-सभा में एक समर्थ ज्योतिषी आया। राजा अपने दोनों कुमारों के साथ बैठे थे। ज्योतिषी ने दोनों राजकुमारों की आकृति देखी। दोनों की सामुद्रिक रेखाएँ देखने पर कनिष्ठ कुमार की रेखाएँ/ लक्षण अतिशय प्रभावशाली लगी। ज्योतिषी ने कहा—राजन्! आपके दोनों पुत्रों में से भविष्य में कनिष्ठ राजकुमार राजगद्दी पर आरूढ़ होगा, ऐसा मुझे लगता है।

ज्योतिषी ने तो सामान्य जानकारी कही किन्तु इसके भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। क्या ज्येष्ठ राजकुमार की अकाल में मृत्यु होगी? क्या कनिष्ठ राजकुमार कोई राजनैतिक खटपट करेगा? क्या राजा खुद पक्षपात करेंगे? ज्योतिषी की बात से ज्येष्ठ राजकुमार का चेहरा उतर गया। देखते ही कनिष्ठ कुमार परिस्थिति को समझ गया। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह ज्येष्ठ भ्राता के राज्यारूढ़ होने में बाधक नहीं बनेगा। किन्तु इस का कोई अटल निश्चय/निर्णय न हो तो अन्त तक संशय रहेगा—क्या निर्णय किया जाय? अन्त में कनिष्ठ राजकुमार ने खड़े हो कर कहा—पिताजी! राजगद्दी बड़े भाई साहब को मिलनी चाहिए व उन्हें ही मिलेगी। मैं इसीक्षण प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं राजमहल और गृहस्थ जीवन त्याग कर 'जैन मुनि' बनूंगा। सभी कनिष्ठ राजकुमार की बात सुनकर चकित हो गए। उसे मनाने का

बहुत प्रयास किया गया किन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ और अटल रहा। थोड़े दिन बाद ही वे राजमहल और राजधानी छोड़कर नगर के बाहर रहे हुए जैन मुनियों के धर्म स्थान में जाकर दीक्षा लेकर जैन मुनि के रूप में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। जनता उन्हें राजकुमार साधु महाराज—इलंगो अडिगल रूप में पहचानने लगी। राजकुमार रूप का उनका नाम विस्मृत हो गया।

राजा नेडुन्चेरलादन जब स्वर्गवासी हुए तो उनके उत्तराधिकारी ज्येष्ठी राजकुमार चेंगुट्टवन राज्याभिषिक्त हुए। इस से इलंगो अडिगल को अपना इच्छा पूर्त्ति से आनंद हुआ।

इलंगो अडिगल राजकुमार से साधु हुए थे। इसलिए इन्हें गृहस्थ राज-जीवन तथा साधुजीवन दोनों का अच्छा परिचय था। इन्हें काव्यकला, संगीत, नाटक, शिल्प इत्यादि सभी कलाएँ बाल्यकाल से ही अभ्यस्त थी। इनके कितने ही मित्र ऐसी भिन्न-भिन्न कलाओं के प्रेमी होने से बारबार मिलकर विद्वद् गोष्ठी करते थे। साधु होने के बाद भी ठीक अवकाश मिलने के कारण इलंगो अडिगल का जैसे-जैसे शास्त्राभ्यास बढ़ा, विभिन्न विद्याओं का ज्ञान भी वृद्धिगत होता रहा।

एक बार ज्येष्ठ भ्राता राजा चेंगुट्टवन अपने परिवार के साथ पहाड़ पर पेरियारु नदी के किनारे अपना ग्रीष्मावास करने जाने वाले थे तो इलंगो अडिगल को भी वहाँ पधारने की साग्रह विनती की। इलंगो अडिगल विहार करके वहाँ पधारे। जैन मुनि के उचित आवास में ठहरे। उस समय इनके कविमित्र चात्तनार को भी वहाँ पधारने का निमंत्रण मिला। पहाड़ी लोग राजा के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ भेंट करने के लिए लाये। फिर उन्होंने कितने ही लोक गीत गाये। उस समय उन्होंने एक स्तन वाली देवी की बात की, जिससे सब को जानने की बड़ी उत्सुकता हुई। कवि चात्तनार उस देवी संम्बन्धी समग्र वृत्तान्त जानते थे अतः सविस्तार बतलाया। सारा कथानक सुनकर इलंगो अडिगल ने कहा—इस विषय में एक बड़ासा सुन्दर महाकाव्य लिखने की इच्छा होती है! सब ने उनके इन विचारों का स्वागत किया। जीवन वृत्त की मुख्य घटना झांझर के इर्द-गिर्द है, अतः इलंगो ने इस महाकाव्य का नाम इसी पर रखने का निर्णय किया। झांझर (नुपूर) के लिए तमिल शब्द है 'सिलम्बु'। इसका कथानक अथवा प्रकरण अर्थात् 'अधिकार' (तमिल में आदिकार) अतएव महाकाव्य का नाम दिया गया

'सिलप्पदिकारम्'। इलंगो ने पद्य के बीच-बीचमें कितनी ही गद्य कंडिकाओं के साथ इस महाकाव्य की रचना की। तमिल भाषा का यह एक श्रेष्ठ महाकाव्य मान्य हुआ। इस महाकाव्य के वृत्तान्त में 'मणिमेखला' नामकी गणिका पुत्री के बौद्ध भिक्खुणी बनने का वृतान्त आता है। इस कथानक को आगे बढ़ा कर कवि आत्तनार ने 'मणिमेखला' नामक महाकाव्य लिखा। इस प्रकार दोनों कवि मित्रों ने एक ही कथानक पर साथ मिल कर अपने-अपने महाकाव्य लिखे और वे दोनों उत्तम कोटि के प्रमाणित हुए। अर्थात् तमिल साहित्य में इन दोनों महाकाव्यों को जुड़वाँ (twin) महाकाव्य कहा जाता है। जब कि इन दोनों में इलंगो का महाकाव्य उच्चकोटि का हैं। तमिल महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम्' के रचना की यह पूर्व भूमिका है। संक्षेप में इस कथानक पर दृष्टिपात करें—

दो हजार वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में तीन प्रधान राज्य थे। चोल राज्य, पांड्यि राज्य और चेर राज्य। इनमें उस-उस वंश के राजा राज्य करते थे। चोलराज्यकी राजधानी काविरिप्पुम्पट्टिनम थी। कावेरी नदीके तट पर स्थित यह नगर अत्यन्त समृद्ध था। नगर में अनेक धनाढ्य श्रीमन्त निवास करते थे। इस नगर के व्यापारी समुद्री मार्ग से दूर-दूर के प्रदेशों तक व्यापार करने जाते और वहाँ से नाना प्रकार की वस्तुएँ और मूल्यवान रत्न ले आते। नगर में समय-समय पर बड़े-बड़े उत्सव—समारोह आयोजित होते। नागरिक जन अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते थे।

इस नगर में मानयगन (महानायक) नामक एक नामांकित व्यापारी रहता था। जिसके एक पुत्री थी। उसका नाम था कन्नगी। वह अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी। नागरिक लोग उसके रूप और गुण के अत्यन्त प्रशंसक थे।

इसी नगर में एक बड़ा सौदागर रहता था जिसका नाम था मासात्तुवन (महासत्त्व)। वह बड़ा धनाढ्य था। सारे राज्य में अमीरी और सम्पन्नता में राजपरिवार के बाद मासात्तुवन का ही नाम प्रथम श्रेणी में गिना जाता था। मासात्तुवन के एक पुत्र था कोवालन। वह अत्यन्त सुन्दर और बुद्धिशाली था। उसका लालन-पालन बहुत ही उत्कृष्ट रीति से हुआ था। कन्नगी के माता पिता को लगा कि अपनी पुत्री कन्नगी के लिए कोवालन सुयोग्य वर है। इससे उन्होंने उसके माता-पिता के पास मांगा भेजा। दोनों पक्ष को यह संबंध स्वीकार्य था क्योंकि एक-दूसरे के लिए सब प्रकार से योग्य थे। ऐसे

सम्बन्ध से दोनों परिवार में आनन्द छा गया। शुभ मुहूर्त्त में दोनों का विवाह खूब धूमधाम से हो गया। बड़ों ने दोनों को आशीर्वाद दिया। कन्नगी को उसके माता-पिता ने प्रचुर आभूषणादि दायजे में दिये। इनमें सोने के दो झांझर (नुपूर) जो अत्यंत मूल्यवान और दुर्लभ थे, उल्लेखनीय थे।

कोवालन की माता ने नवदम्पती के निवास हेतु एक अलग नया महल बनवा दिया। जो कि उनके कुल परम्परानुरूप भी था। कोवालन और कन्नगी के लिए तदनुसार नौकर-चाकर और धनसंपत्ति की भी व्यवस्था कर दी गयी। अपना अलग स्वतन्त्र घर होने से कन्नगी का सारा दिन गृहकार्य में ही व्यस्त रहता। प्रतिदिन मेहमानों का आवागमन होने से अतिथि-सत्कार में भोजनादि की तैयारी में लगी रहती। गृहद्वार पर आने वाले याचकों को सहाय्य करने में कन्नगी का समय व्यतीत हो जाता। इस प्रकार कोवालन और कन्नगी को सुखमय दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते कितने ही वर्ष बीत गये।

इसी काविरिप्पुम्पट्टिनम् नगर के अन्य भाग में कितने ही गणिका कुटुम्ब रहते थे। इनमें एक सुखी कुटुम्ब में माधवी (तमिल में मादवी) नामक एक रूपवती कन्या थी। वह पाँचेक वर्ष की हुई तभी से उसकी विचक्षणता, चतुराई देखकर उसकी माता ने उसे संगीत, नृत्यादि कलाओं में निष्णात बनाने हेतु उन-उन कला में विश्रुत-विचक्षण शिक्षकों को नियुक्त कर तालीम देना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार माधवी संगीत के साथ बीणा, बाँसुरी, सितार आदि बजाने मे भिन्न-भिन्न प्रकार के शास्त्रीय नृत्य करने में भी पारंगत हो गई। बारह वर्ष की आयु में तो उसकी कला की प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। राज-दरबार में होने वाले कार्यक्रमों में भी उसने स्थान प्राप्त कर लिया। जब इसने प्रथम बार राज महल में नृत्य किया तो राजा भी अत्यन्त प्रभावित होकर प्रसन्न हो गया। राज्य प्रणालिकानुसार राजा ने उसे रत्न-जटित बहुमूल्य स्वर्णहार के साथ एक हजार आठ सुवर्ण मुद्राएँ भेंट की।

माधवी जब तरुण हो गई तो तत्कालीन प्रथानुसार उस तेजस्वी गणिका-पुत्री का सम्बन्ध किसी अत्यन्त श्रीमंत पुरुष से जुड़ना चाहिए इस हेतु उसकी माँ ने परिवार की एक कुब्जा स्त्री को राजा की ओर से प्राप्त हार देकर कहा कि तुम श्रीमंतों के मुहल्ले में जाकर कहो कि जो पुरुष इस हार को एक हजार आठ सौ स्वर्ण मुद्राओं में खरीदेगा उसे माधवी के साथ प्रणय सम्बन्ध का अधिकार मिलेगा। यह बात जब कोवालन ने सुनी तो वह बड़ा श्रीमंत होने से व इतनी स्वर्ण मुद्रा उसके लिए साधारण-सी बात होने से एवं

उस जमाने में गणिका के यहाँ जाने की श्रीमन्तों में प्रथा थी और इससे समाज में प्रतिष्ठा घटने के बदले और भी बढती थी। अतः कोवालन ने वह हार स्वर्ण मुद्राएँ देकर खरीद लिया। कोवालन को माधवी के घर ले जाया गया। वह उसके सौन्दर्य से मोहित हो गया और वहीं रहकर उसके प्रणय सम्बन्ध में इतना जुड़ गया कि उसे वापस घर लौटना भी नहीं जँचा।

इस प्रकार दिन बीतते। वह अपना घर और कन्नगी को भूल कर माधवी का घर ही अपना घर समझ कर उसके पीछे प्रचुर द्रव्य व्यय करता। उस जमाने में ऐसी घटनाएँ घटती थीं। कन्नगीको जब प्रतीक्षा करते ज्ञात हो गया कि कोवालन गणिका के घर में रह गया है तो वह अत्यन्त दुखी हुई। उसे सुन्दर वस्त्रालंकार से सुसज्जित हो घर को सजाने में कोई दिलचस्पी नहीं रही। फिर भी वह अपनी विपन्नावस्था किसी को न कहकर अपने तक सीमिति रखती। जब सास-ससुर को ज्ञात हुआ तो उन्होंने कोवालन को घर लाने का यथा शक्य प्रयास किया किन्तु असफल रहे। कन्नगी को सांत्वना देने के सिवा उनके पास अन्य कोई रास्ता नहीं रहा।

इधर माधवी ने कोवालन का हृदय जीत लिया। वह उसे चाहता था अतः उसकी इच्छानुसार धन खर्च करता था। माधवी भी कोवालन के प्रति पतिव्रता स्त्री की भाँति रहने लगी। एक गणिका होकर इस प्रकार रहना सरल नहीं था पर वह इमान धर्म से रही। माधवी सगर्भा हुई और उसने एक पुत्री को जन्म दिया। इस पुत्री का नाम क्या रखा जाय? कोवालन ने अपनी पुत्री का नाम मणिमेखला (तमिल मणिमेकलै) रखना निश्चित किया। मणिमेखला एक जल देवी का नाम है। इस जल देवी ने कोवालन के एक पूर्वज के जहाज को समुद्र में डूबने से बचा कर किनारे पहुँचाया था। उस पूर्वज ने दया-दान के प्रचुर पुण्यकार्य किये थे। इससे कोवालन ने अपनी पुत्री का नाम मणिमेखला रखा।

कोवालन और माधवी ने अपनी पुत्री के नाम करण का उत्सव बड़े ठाठ से किया। उस दिन उन्होंने प्रचुर याचकों को स्वर्ण मुद्राएँ दी। एक गरीब वृद्ध ब्राह्मण उसके पास दान लेने आता था, तो रास्ते में एक मदोन्मत्त हाथी ने उसे सूंड से उठा लिया। कोवालन को ज्ञात होते ही उसने हाथी के पास जाकर वीरतापूर्वक उस ब्राह्मण को छुड़ाया और हाथी को शान्त किया।

कोवालन यों बहुत उदार और परोपकारी था। एकबार किसी ब्राह्मण पत्नी के हाथ से एक नेउला मारा गया। ब्राह्मण उस पापी पत्नी को छोड़कर चला

गया। कोवालन को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने उस ब्राह्मणी को विधि पूर्वक प्रायश्चित लेने में आवश्यक द्रव्य सहायता की और उसके पति को खोजकर उसे मनाया और समझा-बुझाकर पति-पत्नी को एकत्रित कर दिया।

इसी प्रकार किसी ने एक सती स्त्री के चारित्र में मिथ्या दोषारोपण किया तो उस क्रूर अपराधी को एक भूत ने पकड़ लिया। कोवालन को उस क्रूर अपराधी के माता-पिता को दुख से रोते हुए देखकर उन पर दया आ गई तो उसने भूत को उसके बदले अपने प्राण लेने की प्रार्थना की, किन्तु वह न माना और अपराधी के प्राण हरण कर लिये। निरुपाय कोवालन ने अपराधी के माता-पिता को बहुत सांत्वना दी और आवश्यक सहायता करके उनके दुख का सहभागी बना।

यों कोवालन दिल का बहुत ही उदार और भला आदमी था, किन्तु माधवी के पीछे प्रचुर द्रव्य व्यय करने एवं उसी प्रकार लोगों को खुले हाथ देने के कारण उसके पूर्वजों की संचित सम्पत्ति दिनों दिन क्षीण होने लगी। इस प्रकार अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट होना ज्ञात कर वह उदास रहने लगा।

काविरिप्पुम्पट्टिनम् नगर में प्रति वर्ष ग्रीष्म ऋतु में इन्द्र पूजा का वार्षिक उत्सव मनाया जाता। शहर अति समृद्ध था अतः सुखी लोग इस उत्सव में उल्लास पूर्वक भाग लेते। निकटवर्त्ती देशों के लोग ही नहीं किन्तु सुदूर हिमालय तक के राज्यों के लोक भी इस उत्सव और मेले को देखने के लिए आते। नगर की गलियों को ध्वजा-तोरण से सुसज्जित किया जाता। नृत्य संगीत के विविध कार्यक्रम आयोजित होते। मन्दिरों में प्रार्थनाएँ होती। कावेरी नदी के जल में इन्द्र देवता की मूर्त्ति को स्नान कराया जाता।

इस महोत्सव में आयोजित नृत्य संगीत के कार्यक्रमों में एक कार्यक्रम माधवी का भी था। माधवी ने इसके लिए पूरी तैयारी की थी। सुन्दर वेश-भूषा में सुसज्जित माधवी ने बहुत ही आकर्षक नृत्य किया, जनता खूब आनन्दित हुई किन्तु अपनी सम्पत्ति में न्यूनता आ जाने से उदास कोवालन माधवी के नृत्य से प्रसन्न न हो सका। माधवी इस बात को तुरन्त समझ गई। प्रतिवर्ष यह उत्सव पूर्ण होने के वाद लोग कावेरी और समुद्र के संगम स्थल के तट पर एकत्रित होकर आनन्द मनाते। कोवालन को प्रसन्न करने के लिये माधवी उसे इस उत्सव हेतु वहाँ ले गई।

संगम स्थल पर समुद्र तट की बालू पर शामियाना तैयार कराया गया। माधवी की दासी बसंतमाला ने बैठक प्रस्तुत की एवं वाजित्र यथा स्थान सुस-

ञ्जित हुए। बसंतमाला ने 'याल' नामक वाजित्र के तार बराबर किये, माधवी ने बजा कर देखा। फिर माधवीने कोवालन को यह बजाने के लिए दिया और मधुर गीत गाने को कहा। कोवालन माधवी को प्रसन्न करना चाहता था अतः उसने सरिता-सागर के संगम के गीत और अन्य कितने ही लोक गीत गाये। इनमें प्रणय की अभिव्यक्ति थी। कोवालन सहज भाव से ये गीत गाता-बजाता था, किन्तु माधवी को न जाने ऐसा क्यों लगा कि कोवालन किसी अन्य प्रियतमा के लिये ऐसे गीत गाता है। कोवालन अब मेरे से नाराज हो गया है—माधवी का यह अनुमान सत्य नहीं था। किन्तु एक बार मन में संशय पैदा हो जाय तो वह झटपट नहीं निकलता। इससे कोवालन ने जब माधवी को 'याल' बजाने के लिए दिया तो माधवी ने भी प्रतिकार रूप में वैसे ही गीत गाये। परन्तु इससे कोवालन को ऐसा लगा कि मैं तो माधवी को बहुत चाहता हूँ परन्तु माधवी ने तो पर पुरुष के साथ के प्रेम के गीत गाये। मेरी सम्पत्ति न्यून हो गयी है अतः अवश्य ही इसने किसी अन्य पुरुष से सम्बन्ध जोड़ लिया होगा। आखिर माधवी एक गणिका ही तो है। गणिका का स्वभाव नहीं जाता। अब तक इसने मुझे धोखे में रखा, वह मन में बेवफाह थी। वह मेरा धन-दौलत हस्तगत करने के लिए ही मुझे चाहने का दिखावा करती थी।

माधवी गाती थी तब कोवालन के चित्त में उठते ऐसे-ऐसे विचार वेग पकड़ते जाते थे। माधवी को इसी क्षण छोड़ देना चाहिए, इस निर्णय पर वह आया और एकाएक उठ खड़ा हुआ, एकाएक चलने लगा। माधवी एकदम विचार में पड़ गई। क्या करूँ? उसके समझ में नहीं आया। अपने गीतों का ऐसा परिणाम आएगा ऐसा उसने कभी नहीं सोचा था। उसे पश्चाताप हुआ किन्तु अब कोई अन्य उपाय नहीं था। वह अपनी दासियों के साथ अकेली घर आ गयी।

घर आकर माधवी ने विचार किया कि मुझे स्वयं कोवालन को मना लेना चाहिए! उसने पुष्पों का एक हार बनाया। उसमें एक पुष्प के बड़े गुच्छ पर कोवालन को वापस लौटने के लिए आग्रहपूर्ण प्रार्थना विनय पूर्वक लिखी। उसने बसंतमाला के साथ वह हार भेजा। बसंतमाला ने नगर में खोजते-खोजते एक स्थान पर उसे खोज निकाला। उसने हार देते हुए माधवी के द्वारा लिखित संदेश की बात कही, किन्तु कोवालन ने हार लेना अस्वीकार करते हुए कटुतापूर्वक कहा कि माधवी आखिर तो एक गणिका ही रही।

मैंने उसे इतना अधिक प्रेम दिया, उसने बदले में मेरा सारा धन हरण कर लिया। बसंतमाला ने लौट कर माधवी को कोवालन की कही बातें सुना दी जिससे उसे बड़ा दुःख हुआ। कोवालन के वियोग में उसे रात भर नींद नहीं आयी, नाना विकल्प आते रहे। इस प्रकार एक प्रणय सम्बन्ध का करुण अन्त हो गया।

इधर कोवालन के चले जाने से उसकी पत्नी कन्नगी अत्यन्त दुःखी हो गयी थी। उसका शरीर सूख गया था, मुख कान्ति विहीन हो गई थी। उसके पास रही हुई सारी सम्पत्ति क्रमशः शेष होने को आई थी। वह कोवालन के लिए झुरती रहती थी। उसके सास-ससुर उसका ध्यान रखते और आश्वासन देते रहते थे। एक रात्रि में उसे स्वप्न आया कि वह स्वयं कोवालन के साथ किसी बड़े नगरमें घूमने आयी है। इतने में किसी ने कोई मिथ्या आरोप लगाया और राज्यके अधिकारीने उसे पकड़ लिया। कन्नगी राजाके पास गयी और पति की निर्दोषता प्रमाणित कर बतायी। इससे कोवालन को छोड़ दिया गया। किन्तु कोवालन को गलत सताये जाने के कारण नगर पर प्राकृतिक आपत्ति आ पड़ी। कन्नगी ने अपने इस स्वप्न की बात अपनी सहेली देवंदी को कही। देवंदी ने कहा—यह तो एक शुभ संकेत है। कोवालन से तुम्हारा वियोग हुआ वह कोई पूर्वकृत अशुभ कर्म के कारण है, अब कोवालन के साथ तुम्हारा मिलाप हो जाना चाहिए।

इतने ही में कन्नगी की एक दासी ने आकर समाचार दिया कि कोवालन घर आ रहा है। मानो स्वप्न सत्य हो गया। कन्नगी को अपार हर्ष हुआ। कोवालन घर आया, वह कन्नगी की हालत देखकर दिग्मूढ हो गया। अरे! मेरे कारण इस बिचारी की यह दशा हो गयी! उसने कन्नगी से क्षमा याचना की। बुरी स्त्री के फंदे में पड़ कर सारा धन गँवा दिया, इसके लिए दुःख व्यक्त किया। उसने कहा—कन्नगी! मैं तो बिलकुल निर्धन हो गया।

कन्नगी ने कहा—कोवालन! आप इसके लिए जरा भी चिन्ता न करें! अपने सादगी से रहेंगे! फिर कहा—नाथ! मेरे पास यह सोने की कीमती झांझर है, यह आप खुशी से ले लें। इससे प्रचुर धन मिलेगा, जिससे व्यापार करें।

कोवालन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—कन्नगी, तुम सचमुच देवी हो। इस झांझर के द्रव्य से तो मैं बहुत धन कमा सकूँगा, किन्तु ऐसे व्यापार के लिए मुझे मदुराई जाना पड़ेगा, यहाँ तो मैं बदनाम हो चुका हूँ। अपने

शहर में अनुकूल नहीं होगा। यदि तुम मेरे साथ चलो तो मदुराई चले जाने की इच्छा है। अपने माता-पिता को कहे बिना चुपचाप चल पड़ें।

कन्नगी ने स्वीकार कर लिया दूसरे दिन निकल जाना निश्चित हुआ। वे दोनों पिछली रात्रि में चुपचाप नगर से बाहर निकल कर मदुराई के मार्ग में चलने लगे।

मदुराई का मार्ग कठिन था, वे काबेरी नदी के किनारे-किनारे पगडण्डी से चल रहे थे। आगे जाते घनघोर जंगल आ गया। कन्नगी चलते हुए थक जाती थी, इतने में ही एक वाटिका जैसा स्थान आया, जिसमें वे प्रविष्ट हो गए। वहाँ एक जैन भिक्षुणी—आर्याजी थीं जिनका नाम कबुंदी था, वे उन्हें वन्दन कर बैठे। कुछ आराम करने के बाद आर्याजी के पूछने पर बतलाया कि वे अपना भाग्य परीक्षा करने मदुराई जा रहे हैं। भोजनानन्तर आर्याजी से वार्तालाप में कोवालन को ज्ञात हुआ कि मदुराई का मार्ग अत्यन्त विकट है। आर्याजी उस प्रदेश के वाकिफकार थे, उन्होंने कहा अमुक मार्ग कुछ निकट है किन्तु उस मार्ग पर चलना कन्नगी के लिए कठिन होगा। अतः दूसरे सरल मार्ग से जाना चाहिए जो कुछ लम्बा पड़ेगा। किन्तु कौन-सा सरल और कौन-सा विकट है यह पता न लगे तो उन्मार्ग में चढ़ जाना सम्भावित है। कोवालन और कन्नगी की उलझन को देखकर आर्याजी ने कहा—चलो मैं भी साथ चलती हूँ। मुझे भी उधर विहार करना है। क्योंकि मेरे गुरु भगवंत उसी ओर विचरते हैं, मुझे उन्हें वन्दन भी करना है।

आर्याजी ने अपना कमण्डल, मोर पीछी और उपधि के साथ विहार किया। कोवालन कन्नगी भी साथ चले। मार्ग में ठहरते-ठहरते चले। जहाँ अनुकूलता होती तो आर्या जी कोवालन और कन्नगी को जैन धर्म के विषय में प्रवचन भी सुनाते। इस प्रकार वे कावेरी के तट पर स्थित श्रीरंगम नगर में पहुँचे। वहाँ जिनालयों के दर्शनकर मुनि भगवंतों से प्रवचन सुना। रास्ते में उन्हें एक ब्राह्मण पथिक मिला, उसने मदुराइ के पांडिय राजा की बड़ी प्रशंसा की। पांडिय राजा के राज्य में न्याय प्रवर्त्तित है, चोर-डाकुओं का भय नहीं और न जंगली पशुओं से भी पथिकों को भय है। मदुराइ जाने का सरल मार्ग भी उसने कोवालन को समझा दिया।

इस विहार-प्रवास में कोवालन-कन्नगी को नाना प्रकार के अनुभव होते। गरमी बहुत पड़ती, आदिवासी लोगों का भी अनुभव होता। प्यास अधिक लग से कोवालन को पानी को खोज कर लाना पड़ता। आगे जाने पर रण

जैसा प्रदेश आया, गरमी अधिक पड़ती थी जो कन्नगी को सहन नहीं होती। आर्या जी ने उपाय बतलाया कि दिन में आराम करके रात्रि में सफर करना क्योंकि पांडिय राजा के राज्य में कोई भय नहीं है। इस प्रकार वे मार्ग तय करके आगे बढ़ने लगे।

एक बार कोवालन अकेला पानी लेने गया। वहाँ उसे एक मनुष्य मिला, उसका नाम कौसिगन था, उसने कोवालन को पहचान लिया। वह कोवालन की खोज में ही था, जब कि कोवालन की आकृति पहले से काफी बदल गई थी। कौसिगन को माधवी ने भेजा था। उसने माधवी का संदेश कहा, इसमें मुख्य बात यह थी कि माता-पिता से पूछे बिना कोवालन कन्नगी के साथ नगर छोड़ कर निकल गया जिससे माता-पिता अत्यन्त दुखी हो गये हैं। सगे-सम्बन्धी भी दुखी हो गये। कौसिगन ने माधवी का पत्र कोवालन को दिया। उसमें माधवी ने अपनी भूल के लिए क्षमायाचना की थी। उसकी भूल के कारण ही कोवालन के माता-पिता को दुख भोगना पड़ा इसके लिए भी माधवी ने क्षमा मांगी थी। पत्र पढ़कर कोवालन को लगा कि इस प्रकार नगर छोड़ने में उसने भूल की है। उसने माधवी तथा अपने माता-पिता से अपनी ओर से क्षमा मांगने के लिए सन्देशवाहक कौसिगन को विनती की।

तदनन्तर कोवालन, कन्नगी और आर्याजी के पास आया। वहाँ उसे कितने ही मनुष्य मिले जो एक देवी की आराधना के लिए गायन गा रहे थे। उन्हें पूछने पर ज्ञात हुआ कि अब तो मदुराइ निकट ही है।

वे रात्रि-रात्रि में चलते हुए आगे बढ़े और प्रातःकाल मदुराई के निकट आ पहुँचे। राजमहल और मन्दिरों की मधुर ध्वनि सुनाई देती थी। वे मदुराइ के एक मुहल्ले में आ पहुँचे, शहर का वातावरण एक अलग ही लगता था। वे नदीतट पर जैन मुनियों के एक धर्म स्थान में ठहरे। कोवालन ने आर्याजी से कहा, मैं नगर में जाकर कितने ही व्यापारियों से मिलना चाहता हूँ, तब तक कन्नगी को अपने पास रखें। मेरे कारण कन्नगी को बहुत कष्ट उठाना पड़ा है। आर्याजी ने कोवालन को आश्वासन दिया, सदाचारी जीवन की महिमा समझाई। साधु जीवन की महत्ता दर्शाई और नगर में जाकर व्यापारियों से मिलने के लिए जाने की अनुमति दी।

कोवालन मदुराइ नगर में गया। भिन्न-भिन्न गलियों तथा बाजारों में घूमा। कितने ही व्यापारियों के साथ किस व्यापार में कितनी रकम लगाने की आवश्यकता पड़ती है? आदि वार्तालाप किया। वह मदुराइ के लोगों से बड़ा प्रभावित हुआ और संध्या समय धर्म-स्थान में वापस लौटा।

उस समय एक ब्राह्मण यात्री आया, उसने कोवालन को तुरन्त पहचान लिया, वह कोवालन के नगर का ही था। वह कन्याकुमारी की यात्रा हेतु निकला था। कोवालन अनेक लोगों की सहायता करता था और नगर का सुप्रतिष्ठित युवक था। यह बात उसने आर्यांजी से कही। कोवालन की वर्त्तमान विपन्न दशा देख कर बहुत दुखी हुआ। उसने कोवालन से कहा कि अवश्य ही तुम्हारे किसी पूर्व कर्मोदय के कारण तुम्हें यह दुख पड़ा है।

यह बात चल रही थी तब कोवालन ने कहा—कल रात्रि में मुझे एक दुःस्वप्न आया था। उसमें मैंने देखा कि नगर में कितने ही बदमाश लोगों ने मुझे अपने जाल में फंसाया, मेरे पास जो कुछ था वह लूट लिया और मुझे नग्न करके भैंसे पर बैठाकर फिराया। यह सुन कर कन्नगी को भी बहुत दुःख हुआ। फिर माधवी ने मेरी पुत्री मणिमेखला को भिक्षुणी बनाने के लिए किसी बौद्ध भिक्षुणी को सौंप दिया।

इस दुःस्वप्न की बात सुनकर आर्यांजी ने कोवालन से कहा कि 'तुम्हें यहाँ मुनियों के निवास स्थान में रहना उचित नहीं, अतः तुम कहीं दूसरे स्थान में व्यवस्था करो तो अच्छा हो। इतने में ही मादरी नामकी एक ग्वालिन वहाँ से निकली। उसने आर्यांजी को वंदन किया। आर्यांजी ने कहा कि—तुम इस कोवालन और कन्नगी को थोड़े दिन अपने यहाँ मेहमान रूप में रखो, तब तक यह नगर में जाकर अपने सगे-सम्बन्धी का घर खोज लेगा। मादरी इस बात को मान गई और कोवालन-कन्नगी को अपने घर ले गई।

कन्नगी और कोवालन के आगमन का समाचार गोवालों के आवास में फैल गया। मादरी को पता था कि कोवालन और कन्नगी जैन श्रावक हैं अपने घर का रंधा हुआ भोजन नहीं लेंगे अतः उसने कन्नगी को बासन, बर्तन, अनाज आदि दे दिए। बहुत अरसे बाद कन्नगी को व्यवस्थित रूप से रसोई करने का अवसर मिला था। रसोई बनाने में वह बहुत कुशल थी। दोनों ने भोजन करके आराम किया और सुख-दुख की बातें की। कन्नगी ने कोवालन के माधवी गणिका के घर चले जाने के प्रसंग की बात निकाली तो कोवालन ने बड़ा पश्चात्ताप जाहिर किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल कोवालन ने कन्नगी से कहा—आज मैं बाजार में जाकर एक झाँझर बेच आऊँ ताकि उससे प्राप्त द्रव्य में से कोई व्यापार किया जा सके। कन्नगी ने अपने पास रखी पोटली में बाँध के रखी सोने की दो झाँझरों में से एक दी। कोवालन ज्योंही घर से निकला उसे सामने एक

अपंग मनुष्य मिला। गवालों के अनुसार यह शकुन शुभ नहीं था, किन्तु कोवालन या कन्नगी को इसका पता नहीं था। कोवालन झांझर लेकर नगर में एक सुनार की बड़ी दुकान में गया। यह सुनार नगर में बड़ा सुनार था, राज कुटुम्ब के आभरण भी वही बनाता था अतः दाम दर में अनुकूलता रहेगी समझकर कोवालन ने उसे झांझर दिखाई और कहा मुझे यह बेचना है, कितनी कीमत मिलेगी!

सोने की सुन्दर कलापूर्ण मूल्यवान झांझर देखकर सोनी विचार में पड़ गया। ठीक ऐसी ही झांझर रानी की है। उसमें से सोनी ने स्वयं एक झांझर चुरा ली थी। अतः उसे यह एक अच्छा अवसर मिल गया। उसने सोचा—यह मनुष्य अनजान परदेशी है और इसके पास एक ही झांझर है अतः मैं राजा-रानी को कह आऊँ कि रानी के झांझर का चोर यही है।

उसने कोवालन को एक जगह बैठा कर कहा—इतनी बहुमूल्य झांझर राजा की रानी ही खरीद सकती है, मैं राजमहल में जाकर पूछ आता हूँ, तुम तब तक यहीं बैठो। सोनी ने राजमहल में जाकर कहा—राजन्! राणी का जो झांझर चोरी हो गया वह चुराने वाला चोर एक स्थानपर छिपा बैठा है! राजा ने आवेश में आकर सिपाहियों को हुक्म किया कि—जाओ, चोर को मृत्यु-दण्ड देकर झांझर उसके पास से ले आओ।

सोनी के साथ सिपाही आया। सोनी ने कोवालन को झांझर दिखाने को कहा। उसने सरलता से झांझर दिखाई, किन्तु उसकी आकृति और हाव-भाव से सिपाही को लगा कि यह कोई चोर नहीं है, उसने कोवालन को मारने की आना-कानी की। इतने में ही एक शराबी सिपाही ने तलवार चलाकर कोवालन को घायल कर दिया। वह धराशायी हो गया और रक्त अधिक प्रवाहित होने से मृत्यु हो गई।

न्याय-नीति में प्रख्यात पांडिय राज्य में यह एक घोर अन्यायपूर्ण अपकृत्य हो गया, मानो यह विनाश की दुखद सूचना ही थी।

इसी समय गोवालों के आवास में कुछ अमंगल होने लगे। विलोने में मक्खन नहीं निकलता, गायें काँपने लगी, भेड़-बकरी शांत बनकर बैठ गए। पालतू पशुओं में शून्यता आ गई। गोवालिन मादरी को लगा कि अवश्य ही कोई आपत्ति आने वाली है। अतः वह सभी स्त्रियों को एकत्र कर भगवान की प्रार्थना के गीत गाने लगी।

इतने में ही एक लड़की नगर की ओर से दौड़ती आई, उसने खबर दी

कि—मैं स्वयं सुनकर आयी हूं कि चोरी के अपराध में कन्नगी के पति का राजरक्षकों ने खून कर दिया है। यह समाचार सुनते ही कन्नगी काँप उठी और बेहोश हो गई। होश में आने पर वह विलाप करने लगी। उसने सूर्यदेव से प्रार्थना की कि मेरा पति कभी किसी की चोरी नहीं करता यह तो बड़ा अन्याय हुआ है। इतने में ही आकाशवाणी हुई कि—कोवालन चोर नहीं, इसने चोरी नहीं की है, ऐसे निर्दोष मनुष्य का खून करने से मदुराई शहर अग्निदाह से आक्रान्त हो जाएगा।

कन्नगी अपने पास वाला झांझर लेकर नगर में गई और अपना हाथ ऊँचा कर झांझर बताती हुई लोगों को कहने लगी कि मेरे पति को अन्याय-पूर्वक मार डाला गया है। संध्या हो रही थी, कितनी ही स्त्रियाँ उसे कोवालन के शव के पास ले गईं। वहाँ बैठकर कन्नगी ने बहुत कल्पान्त किया, फिर नागरिकों को भी इस अपकृत्य के लिए उपालम्भ दिया। वह कोवालन के शव से लिपट पड़ी। उस समय उसे कुछ आभास हुआ कि कोवालन खड़े होकर कन्नगी के आँखों के आँसू पोंछकर देवलोक में चला गया। अपने इस आभास को कन्नगी ने एक बार सच्चा माना। फिर खड़ी हो गई, वह बहुत खिन्न थी, रोष में भरकर वह राजा के पास जबाब-तलब करने गई। उस दिन रानी को भी एक दुःस्वप्न आया वह राजा से अपने स्वप्न की बात कह रही थी, तभी पहरेदार ने जाकर कहा—कोई स्त्री हाथ में झांझर लिये आई है वह बड़ी क्रुद्ध है। उसे अन्दर बुलाकर पूछा गया—तुम कौन हो और किसलिए आयी हो ? कन्नगी ने अपना परिचय दिया और सारा वृतान्त बतलाकर पूछा कि मेरे पति को क्यों मार डाला गया।

राजा ने कहा—चोर को मार डालना अन्याय नहीं है।

कन्नगी ने कहा—मेरा पति चोर नहीं, उसने झांझर चुरायी नहीं है। यह झांझर मेरी है, मैंने ही उसे बेचने के लिए दिया था।

राजा ने कहा—नहीं यह झांझर रानी की है, चोरी हो गयी थी।

कन्नगी ने कहा—नहीं, रानीके झांझर से मेरी झांझर अलग है, मेरी झांझर में रत्न भरे हुए हैं, रानी की झांझर में क्या है ?

राजा ने कहा—हाँ, रानी के झांझर में मोती भरे हुए हैं।

कन्नगी ने तुरन्त अपना झांझर वहीं तोड़ डाला, उसके अन्दर रत्न निकले। राजा देखते ही घोर चिन्तित हो गया, क्योंकि उसके हाथ से बड़ा

भारी अन्याय हो गया था। एक निर्दोष मनुष्य की हत्या हो गई थी। इतने में ही राजा का छत्र अपने आप गिर पड़ा, राजा को अत्यन्त पश्चाताप हुआ। उसने कहा—अरे! एक सोनी की झूठी बात पर विश्वास करके मैंने घोर पाप किया है। मेरे राज्य में आज प्रथम बार ही यह भयंकर अन्याय मेरे हाथ से हो गया। मुझे अब जीने का कोई अधिकार नहीं, यह कहते हुए राजा धराशायी हो गया और प्राणान्त हो गया।

यह देख कर रानी काँपने लगी। एक सौभाग्यवती स्त्री को यह भयंकर अन्याय कैसे सहन हो? बोलते-बोलते वह भी धराशायी होकर मृत्यु को प्राप्त हो गई। कन्नगी का रोष अभी शान्त नहीं हुआ था, वह बाहर आकर नागरिकों को उद्देश्य कर उच्च स्वर में बोली—हे नगरजनों! यह कैसा तुम्हारा नगर है? मेरे जैसी एक निर्दोष स्त्री की तुमने यह दशा की। जाओ, मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि ये मदुराई नगर आग के भड़ाके से जल जाय! यह बोलते-बोलते उसने अपने वक्षस्थल से एक स्तन जोर से उखाड़ कर नगर पर फेंका। उसे फेंकते ही अग्नि देवता प्रकट हुआ। कन्नगी ने उसे आज्ञा दी कि जाओ, नगर को भस्मीभूत करो, किन्तु ब्राह्मणों, सदाचारी मनुष्यों, साधु-सन्यासियों, वृद्धों और महिलाओं, बालकों एवं गोमाता को कुछ भी न हो, यह सावधानी रखना।

थोड़ी देर में ही सारे मदुराई नगर में अग्नि के भड़ाके होने लगे। एक समृद्ध नगर विनाश के पथ पर बढ चला। इसी समय नगर देवता की अदृश्य वाणी सुनाई दी—कन्नगी और कोवालन के पूर्वजन्म के पापों का ही यह परिणाम है! स्वयं पूर्व भव की पापी है यह ज्ञात कर कन्नगी को अपार कष्ट हुआ। वह नगर से बाहर जाकर नदी तट पर इतस्ततः भटकने लगी। १४ दिन इस प्रकार भटक कर वह एक टेकरी पर चढी और झंपापात कर अपना प्राणान्त कर दिया। कोवालन के साथ वह भी देवलोक में गई।

इधर कोवालन के अन्यायी खून के समाचार सुन कर गोवालिन मादरी को इतना असह्य दुःख हुआ कि उसने अग्नि-प्रवेश कर अपना जीवन समाप्त कर दिया। आर्याजी कवुंदी ने भी अनशन व्रत धारण कर देह छोड़ा।

कोवालन और कन्नगी की यह दुर्घटना वार्त्ता ब्राह्मण यात्री मदालन को जब ज्ञात हुई तो अपने नगर में लौटकर सबको बतलाई। यह सुनकर माधवी गृहत्याग कर बौद्ध भिक्षुणी हो गई।

अपने राज्य की एक पतिव्रता नारी कन्नगी देवी हो गई यह सुनकर चेरा

राज्य के राजा चेन्कुट्टवन ने कन्नगी की मूर्ति बनवा कर एक मन्दिर में स्थापित करने का निर्णय किया। इसके लिए उत्तमोत्तम पाषाण हिमालय से लाने के लिए यात्रा की। राजा शक्तिशाली था अतः मार्गवर्ती राज्यों ने अपनी सीमा में से जाने में कोई बाधा नहीं दी, किसी ने सिर उठाया तो उसे पराजित कर दिया गया। हिमालय से सुन्दर पत्थर प्राप्त कर उसे गंगा नदी के जल से प्रक्षालित कर पवित्र किया गया। रास्ते में ब्राह्मण यात्री मदालन मिला जो गंगा स्नान कर अपना पाप धोने जाता था। उसने क्या पाप किया था? इसने काविरिप्पुम्पट्टिनम् नगर में आकर कोवालन और कन्नगी के जो दुःखद समाचार कहे, उसके परिणाम रूप कन्नगी की माता और कोवालन की माता की मृत्यु हो गई। इन दोनों के पिता घर-बार त्याग कर मुनि हो गये। माधवी सिर मुंडा कर बौद्ध भिक्खुणी हो गई। उसकी पुत्री मणिमेखला भी उसके साथ बौद्ध भिक्खुणी हो गई। इससे मदालन को लगा कि उसने ये समाचार देने का पाप किया है। अतः उसके प्रायश्चित रूप गंगा-स्नान करने गया।

राजा अपने नगर में पत्थर लेकर आया तो प्रजा ने उसका भव्य स्वागत किया। कन्नगी की प्रतिमा बनवा कर नूतन मन्दिर में उसे प्रतिष्ठित किया गया। इस उत्सव के बाद एक दिन राजा ने आकाश में नजर की तो उसे कन्नगी के हाथ में झांझर के साथ की भव्य आकृति दिखाई दी। फिर कन्नगी की दिव्य वाणी सुनाई दी। कन्नगी ने कहा—पांडिय राजा निर्दोष है, वह मर कर यहाँ देवलोक में आया है, यहाँ वे मेरे पिता तुल्य हैं।

राजा ने कन्नगी के मन्दिर में नियमित दर्शन, प्रार्थना, पूजा, आरती आदि चालू कर दिया। नगर-जन भी मन्दिर में जाने-आने लगे। कन्नगी देवी की महिमा का बड़ा विस्तार हुआ।

कवि इलंगो अडिगल ने इस महाकाव्य को तीन कांडों में लिखा है। प्रथम काण्ड का नाम है पुगार काण्ड, दूसरे का नाम है मदुराइ काण्ड और तीसरे का नाम है वंजी काण्ड। दक्षिण भारत के तीन मुख्य राज्य चोल राज्य पांडिय राज्य और चेर राज्य की राजधानी के नाम इस महा काव्य के कांड अनुक्रम से दिये गये हैं। क्योंकि काव्य की मुख्य-मुख्य घटनाएँ उन-उन राज्यों में तदनुसार बनती हैं। कवि इलंगो अडिगल स्वयं चेर राज्य के थे, फिर भी उन्होंने तीनों राजाओं और उनकी प्रजा का वर्णन पूरे तटस्थ भाव से किया है। कवि राज-वंशी था अतः राज दरबार, राज्य प्रणालिका

आदि का वर्णन उसने आबेहूब किया है। फिर वे जैन साधु थे, अतः लोगों का व्यावहारिक जीवन और धार्मिक जीवन का भी उनको सूक्ष्म अवलोकन था। इन तीनों राज्यों में शैव, वैष्णव और बौद्ध धर्म का पालन होता था। कवि ने कहीं भी खण्डनात्मक शैली को नहीं अपनाया और न किसी भी धर्म की टीका-टिप्पणी/निंदा ही की। निरुपण में भी इन्होंने समत्व भाव दिखाया है। इसी से इस काव्य में खलनायक का पात्र नहीं है। कवि ने इस महाकाव्य में नीति और सदाचार पर बहुत जोर दिया है। अशुभ कर्म के अर्थात् पाप के फल मनुष्य को इस भव में नहीं तो परभव में अवश्य भोगने पड़ते हैं—इस कर्म सिद्धान्त का इन्होंने प्रतिपादन किया है। कवि की भाषा स्वाभाविक होने पर भी अर्थ गम्भीर है। कवि की पद्य रचना प्रवाही और मनोरम है। कवि के पास मौलिक कल्पना शक्ति है। इस महाकाव्य में कवि की निराली प्रतिभा का सुन्दर परिचय मिलता है। इस प्रकार विविध दृष्टि से यह महाकाव्य ऊँची गुणवत्ता समलंकृत है। इसे तमिल भाषा के प्राचीन महाकाव्यों में प्रथम और आदरणीय स्थान संप्राप्त है। अठारह सौ वर्ष बाद भी यह महाकाव्य अभी जीवित है। और साहित्य विवेचकगण इसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। यही इसकी अद्वितीयता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

इसी भरत क्षेत्र के चक्रपुर नामक नगर में सुग्रीव नामक एक राजा राज्य करते थे। अपने गुणों के कारण वे वक्रग्रीव नहीं थे। उनकी दो रानियाँ थीं भद्रा और यशस्वती। यशस्वती के गर्भ से सुमित्र और भद्रा के गर्भ से पद्म नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ। सुमित्र ज्येष्ठ और पद्म कनिष्ठ थे। सुमित्र सुन्दर गुणवान धर्मनिष्ठ सदाचारी और अर्हत् धर्म का विश्वासी था किन्तु पद्म ठीक उसका विपरीत था।

सुमित्र के जीवित रहते मेरे पुत्र को राज्य प्राप्त नहीं होगा यह सोचकर मूर्ख भद्रा ने एक दिन सुमित्र को विष खिला दिया। विष के प्रभाव से सुमित्र मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। समुद्र तरंग की भाँति विष का प्रभाव विस्तारित होने लगा। खबर मिलते ही राजा सुग्रीव मन्त्रियों सहित वहाँ आए और मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग करवाया। किन्तु कोई प्रतिफल नहीं हुआ। नगर में चारों ओर यह खबर फैल गयी कि भद्रा ने सुमित्र को जहर खिला दिया। इससे भयभीत होकर भद्रा अन्यत्र भाग गयी। राजा ने पुत्र के लिए जिन पूजा और शान्ति आदि कार्य करवाए किन्तु उसका भी कोई फल नहीं हुआ। तब राजा पुत्र के गुणों को स्मरण कर रोने लगे। मन्त्रीगण भी उपचार के अभाव में हताश हो गए।

उसी समय स्वविमान में बैठकर चित्रगति मनोविनोद के लिए इधर-उधर घूमते हुए उस नगर में आ पहुँचे और नगर को शोक में डूबा हुआ देखकर नीचे उतरे। राजकुमार पर विष-प्रयोग हुआ है सुनकर वे विमान से निकल कर राजकुमार के निकट गए और उस पर मन्त्रपूत जल छिड़का। उस जल के स्पर्श से सुमित्र की मूर्च्छा भंग हो गयी। वह इस प्रकार उठ बैठा मानों गहरी नींद से तुरन्त जगा हो। मन स्वस्थ होने पर लोगों की इतनी भीड़ का उसने कारण पूछा। राजा ने बताया पुत्र, तुम्हारी माँ भद्रा ने तुम्हें विष खिला दिया था किन्तु तुम्हारे अकारण धर्मभ्राता इन महापुरुष ने तुम्हें जीवन दान दिया है।

यह सुनकर करबद्ध होकर सुमित्र चित्रगति से बोला, 'अकारण ही आपने मेरा जो उपकार किया है उससे ही आपके उभय कुल का परिचय मिल गया

है। फिर भी आप जैसे महान व्यक्ति का नाम और कुल जानने की इच्छा भला किसकी नहीं होगी।'

चित्रगति के साथ उनका मित्र मन्त्रीपुत्र भी था। उसने चित्रगति का परिचय दिया। उस परिचय को प्राप्त कर सुमित्र अत्यंत आनन्दित होकर बोल उठा, 'हे अकारण बन्धु, मेरी विमाता ने मुझे विष देकर मेरा अपकार नहीं उपकार ही किया है। यदि ऐसा नहीं हुआ होता तो आज आपसे मिलना भी नहीं हुआ होता। आपने मुझे मात्र जीवन दान ही नहीं दिया है बल्कि सर्व विरति रूप धर्म और नमस्कार मंत्र को स्मरण किए बिना मृत्यु होने पर जो दुर्गति होती उस दुर्गति से भी मुझे बचाया है। हे करुणासागर, जीव जगत की रक्षा के लिए मेघ जिस भाँति अकारण ही वृष्टि करता है उसी प्रकार उसी भाँति उपकार करने वाले मुझे जीवन दान देने वाले आपका मैं क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ?'

सुमित्र के ऐसा कहने पर चित्रगति जिसकी कि अब सुमित्र से मित्रता हो गयी थी बोला—'बन्धुवर, मैंने किसी प्रत्युपकार की इच्छा से आपकी उपकार नहीं किया बल्कि वह तो मैंने कर्तव्य-बोध से ही किया था। अतः अब मुझे बिदा दीजिए। मैं अपने नगर को लौटना चाहता हूँ।'

तब सुमित्र बोला, 'हे बन्धु, मुनि सुयश यहाँ समीप ही विचर रहे हैं। उनके यहाँ आने पर आप उन्हें वन्दन करके ही जाएँ। इतने दिनों तक आप यहीं अवस्थित रहें।'

चित्रगति सहमत हो गए और सुमित्र के साथ मानों वे जुड़वाँ भाई हों इस प्रकार क्रीड़ा-कौतुक करते हुए कुछ दिन व्यतीत किए। एक दिन वे एक उद्यान में गए जहाँ केवली मुनि सुयश भी कल्पतरु की भाँति सहसा आ पहुँचे। देवों द्वारा परिवृत होकर वे स्वर्ण कमल पर खड़े थे। जिनके आगमन की वे दीर्घकाल से प्रतीक्षा कर रहे थे उन्हें देखकर उन्होंने प्रदक्षिणा देकर वन्दना की और सम्मुख जाकर बैठ गए।

राजा सुग्रीव भी उनके आगमन का संवाद सुनकर वहाँ आए और उन्हें वन्दना कर सम्मुख बैठ गए। अज्ञान रूपी निद्रा के लिए मुनि ने दिवालोक-सी देशना दी। देशना समाप्त होने पर उन्हें प्रणाम कर चित्रगति बोले, 'हे करुणासागर, आज अर्हत् धर्म के विषय में मुझे सम्यक ज्ञान हुआ है। यद्यपि यह धर्म हमारी कुल परम्परा से चला आ रहा है फिर भी समागत अर्थ को

संविभाग कर भोग करने की भाँति श्रावक धर्म क्या है वह इतने दिन नहीं जानता था। इसके लिए सुमित्र को ही धन्यवाद है जिसने आप जैसे धर्म प्रवक्ता से मेरा परिचय करवाया है।' ऐसा कहकर विज्ञ चित्रगति मुनि से सम्यक श्रद्धा सहित पूर्ण श्रावक धर्म ग्रहण कर लिया।

तदुपरान्त सुग्रीव मुनि को प्रणाम कर बोले, 'हे भगवन्, मेरे प्रिय पुत्र को विष देकर भद्रा कहाँ चली गयी और अभी वह कहाँ है?' मुनि ने उत्तर दिया—'यहाँ से भागकर भद्रा एक अरण्य में गई। वहाँ दस्युओं ने उसके अलंकार छीनकर उसे पल्लीपति को सौंप दिया। पल्लीपति ने उसे एक वणिक को बेच दिया। वणिक के यहाँ से वह भाग गयी किन्तु अरण्य के दावानल में जलकर मर गयी। इस प्रकार रौद्र ध्यान से मृत्यु होने के कारण वह प्रथम नरक में गयी। वहाँ से निकलकर वह एक चण्डाल की पत्नी बनेगी। वहाँ गर्भ धारण करने पर उसकी सौत तीक्ष्ण अस्त्र से उसका गला काट देगी। वहाँ से मृत्यु के पश्चात् दीर्घकाल तक तृतीय नरक भोगकर वह पशु योनि में जन्म ग्रहण करेगी। इस प्रकार वह जन्म-जन्मान्तरों में अनन्तकाल दुख भोगती रहेगी। आपके सम्यक दृष्टि पुत्र को विष देने का यही परिणाम होगा।'

यह सुनकर राजा बोले—'हे भगवन्, जिसके कारण उसने यह दुष्कर्म किया वह यहाँ है और वह अकेली नरक में गयी। राग-द्वेष मय इस संसार को धिक्कार है इससे परित्राण पाने के लिए मैं मुनि-दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।'

तब सुमित्र पिता को प्रणाम कर बोले—'मुझे धिक्कार है कि माँ के इस दुष्कर्म का कारण रूप मुझे बनना पड़ा। हे गुरुदेव, मुझे तुरन्त दीक्षा दें कारण ऐसे क्रूर संसार में भला कौन रहना चाहेगा?' किन्तु राजा ने अपने आदेश से उसे रोका और उसका राज्याभिषेक कर स्वयं दीक्षित हो गए। वे केवली के साथ अन्यत्र चले गए और सुमित्र चित्रगति सहित राजधानी लौट गया। सुमित्र ने भद्रा के पुत्र पद्म को कुछ गाँव दिए किन्तु वह उससे असंतुष्ट होकर अन्यत्र चला गया।

पिता की आज्ञा प्राप्त होने से चित्रगति भी बहुत दुःख से अपने मित्र से विदा लेकर स्वराज्य को लौट गया। चित्रगति देव पूजा, गुरु-वन्दन, तप स्वाध्याय एवं संयम के साथ जीवन व्यतीत करता हुआ अपने माता-पिता को आनन्दित करने लगा।

अनंग सिंह का पुत्र और रत्नावती का भाई कमल ने सुमित्र की बहिन और कलिंग राज की पत्नी का हरण कर लिया है यह बात खेचर के मुख से सुनकर बहिन के दुःख से दुःखी सुमित्र के पास चित्रगति उसे आश्वस्त करने गए। बोले, 'हे मित्र, आपकी बहन को खोजकर मैं अवश्य ही लौटा लाऊँगा।' उसे इस प्रकार आश्वस्त कर चित्रगति दलबल सहित उसे खोजने निकले। राह में खबर मिली कि कमल ने उसका अपहरण कर लिया है। अतः उन्होंने एक वृहद सेना लेकर शिव मन्दिर पर आक्रमण कर दिया। हस्ती जिस प्रकार सहज रूप से कमल नाल को उखाड़ लेता है उसी प्रकार चित्रगति ने सहज ही कमल को युद्ध में पराजित कर दिया।

पुत्र के पराजय से क्रुद्ध बने अनंग सिंह ने सिंह की भाँति गरजते हुए चित्रगति पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। मन्त्र और शस्त्रों के प्रयोग के कारण देवों के लिए भी वह युद्ध भयंकर हो गया। अनंग सिंह ने जब देखा कि शत्रु को सहज ही जीता नहीं जा सकता तब जय लाभ के लिए देवों द्वारा प्रदत्त खड्गरत्न को स्मरण किया। स्मरण करने मात्र से ही खड्ग उसके हाथ में आ गयी। उस खड्ग की ओर देखना भी असम्भव था। कारण शत्रु के लिए काल-सी उस खड्ग से अग्नि शिखाएँ निकल रही थीं।

उस खड्ग को हाथ में लेकर अनंग सिंह ने चित्रगति को पुकार कर कहा—'हे बालक, यदि प्राणों का मोह है तो भाग जा। मेरे सामने खड़े रहने पर इस खड्ग से तेरा मस्तक देह से अलग कर दूँगा।'

यह सुनकर चित्रगति बोले, 'लोहे के एक टुकड़े के हाथ में आ जाने से उसके गर्व में इतने गर्वित हो उठे हो ! धिक्कार है तुम्हारे बाहुबल को। ऐसा कह कर विद्या-बल से उन्होंने ऐसे अन्धकार की सृष्टि की यद्यपि वे उसके सम्मुख खड़े थे किन्तु अनंग सिंह उन्हें देख नहीं सका और चित्रार्पित-सा उनके सम्मुख खड़ा रहा। चित्रगति ने उसी समय उसके हाथ से खड्ग छीन ली और सुमित्र की बहिन को जहाँ रखा था वहाँ से उसे लेकर चले गए। कुछ क्षणों पश्चात् अन्धकार दूर होते ही अनंग सिंह ने चारों ओर देखा। देखा उसके हाथ में खड्ग भी नहीं है और शत्रु भी सम्मुख नहीं है। एक मुहूर्त के लिए वह विषाद के सागर में डूब गया। किन्तु तभी उसे नैमित्तिक की बात याद हो आयी कि जो आपके हाथ से आपकी खड्ग छीन लेगा वही आपका जँवाई होगा। अतः वह हर्षित हो गया।

किन्तु उसे कैसे खोजेगा ? कैसे पहचानेगा ? सोच ही रहा था कि तभी स्मरण हो आया कि उसने यह भी कहा था शाश्वत अर्हत् चैत्य में देव जिस पर पुष्प वृष्टि करेगा वही आपका जँवाई होगा। ऐसा सोचकर वह अपने आवास में लौट गया। चित्रगति भी अपना कार्य सिद्ध हो जाने पर सुमित्र की बहिन को जिसका शील अभी भी अखण्ड था, ले जाकर सुमित्र को सौंप दी।

सुमित्र का हृदय तो पहले से ही संसार से विरक्त था, बहिन के अपहरण से वह विरक्ति और तीव्र हो गयी। उसने तुरन्त अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठा कर मुनि सुयश के पास जाकर चित्रगति के सामने दीक्षा ग्रहण कर ली। सुमित्र के दीक्षा लेने के पश्चात् चित्रगति स्व-राज्य को लौट गए।

दीक्षा लेने के पश्चात् सुमित्र मुनि ने दीर्घ काल तक गुरु के सान्निध्य में रहकर नौ पूर्व का ज्ञान अर्जित कर लिया। तदुपरान्त गुरु की आज्ञा लेकर वे अकेले ही विचरण करते हुए मगध गए और वहाँ गाँव के बाहर कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हो गए। उसी समय उनका सौतेला भाई पद्म भी घूमता हुआ वहाँ आया और उन्हें जगत्-कल्याण में निरत कायोत्सर्ग ध्यान में पर्वत की भाँति स्थिर देखा। दुर्मति पद्म ने मानो नरक में माँ से मिलने की इच्छा से कर्ण पर्यन्त प्रत्यंचा खींचकर मुनि के वक्षदेश को लक्ष्य कर एक तीर छोड़ा। वह तीर मुनि सुमित्र के वक्षदेश में विंध गया।

उसने मेरी हत्या कर मेरी धर्महानि नहीं की है वरन मेरे कर्मक्षय में मित्र की भाँति उपकार ही किया है। मैंने भी उसके प्रति अन्याय किया था, कारण मैंने उसे राज्य नहीं दिया। वह मुझे क्षमा करे। जगत् के समस्त जीव मुझे क्षमा करें। ऐसा चिन्तन कर उन्होंने अन्तिम प्रत्याख्यान किया और नमस्कार मंत्र को स्मरण करते हुए काल प्राप्त कर ब्रह्म देवलोक में सामानिक देव रूप में उत्पन्न हुए। इनकी हत्या कर पद्म वहाँ से भाग गया और रात के समय सर्पदंशन से मरकर सातवें नरक में गया।

सुमित्र की मौत का संवाद पाकर चित्रगति अत्यन्त दुःखी हुए। हृदय को शान्त करने के लिए वे शाश्वत अर्हत् चैत्यों की यात्रा के लिए निकल पड़े। उसी समय वहाँ और भी कई विद्याधर पति आए थे। उनमें रत्नावती सहित अनंग सिंह भी था। चित्रगति ने भक्ति पूर्वक विविध प्रकार से शाश्वत अर्हतों की वन्दना की। उनका शरीर रोमांचित हो गया और वे मधुर कण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे। अवधि ज्ञान से जानकर सुमित्र देव अन्य देवों सहित वहाँ आए

और उनपर पुष्प वर्षा की। विद्याधर पतियों ने चित्रगति की प्रशंसा की और अनंगसिंह अपने भावी जँवाई को पहचान गए। तब सुमित्र देव ने स्वयं को प्रकट कर आनन्दित कण्ठ से चित्रगति से कहा—'क्या तुमने मुझे पहचाना?' चित्रगति ने उत्तर दिया—आप कोई महर्द्धिक देव हैं।' सुमित्रदेव यह सुनकर हँसे और अपना परिचय देने के लिए सुमित्र का रूप धारण किया। सुमित्र को देखते ही चित्रगति ने उन्हें बाहुपाश में जकड़ लिया और बोले, 'क्या मैं तुम्हें भूल सकता हूँ? तुम्हारी कृपा से ही मुझे यह उत्तम धर्म मिला है।' सुमित्र देव बोले, 'बन्धुवर मुझे आज जो वैभव मिला है वह तुम्हारी कल्याण-भावना के कारण ही मिला है। तुम ने ही अपघात मृत्यु से मेरी रक्षा की थी। प्रत्याख्यान और नमस्कार मन्त्र का स्मरण किए बिना ही यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो मुझे मनुष्य भव भी नहीं मिलता।

वहाँ उपस्थित विद्याधर पति चक्री सूर और अन्यान्य सभी उन्हें एक दूसरे की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते देखकर उनकी खूब प्रशंसा करने लगे। रूप और गुणों में श्रेष्ठ चित्रगति को देखकर रत्नावती भी कामशर से पीड़ित होकर उन्हें अनुराग पूर्ण दृष्टि से देखने लगी। उसकी यह अवस्था देखकर अनंग सिंह सोचने लगे—नैमित्तिक ने जो कुछ कहा था वह अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुआ इस चित्रगति ने ही मेरे हाथ से खड्ग छीन ली थी। इसी पर पुष्पवृष्टि हुई और इसके प्रति मेरी कन्या को भी स्वतः ही अनुराग उत्पन्न हो गया है। निःसन्देह रत्नावती का यही भावी पति है। ऐसी कन्या और ऐसा जँवाई तो सौभाग्य से ही मिलते हैं। किन्तु देवालय में विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव करना उचित नहीं होगा।

ऐसा सोचकर अनंग सिंह अनुचरों सहित स्व-राज्य को लौट गया। चित्रगति भी सुमित्र देव को सम्बर्द्धित कर पिता सहित अपने राज्य को लौट गए।

इसके कुछ दिनों पश्चात् ही अनंग सिंह प्रेरित मंत्री चक्री सूर के पास गया और उन्हें प्रणाम कर नम्रता और आत्मीयता पूर्ण भाव में बोला—'हे स्वामिन्, आपके पुत्र कामदेव तुल्य चित्रगति किसे विस्मित नहीं करते? मेरे प्रभु अनंग सिंह की कन्या रत्नावती भी रत्नरूप है। आपके आदेश से योग्य के साथ योग्य का मिलन हो। दोनों पर ही आपका अधिकार है। अनंग सिंह के इस प्रस्ताव पर आप अपनी सहमति देकर हे नरसिंह, मुझे बिदा कीजिए।' योग्य के साथ योग्य का मिलन होना चाहिए सोचकर चक्री सूर ने अपनी

सहमति दे दी। समय पर खूब धूमधाम से दोनों का विवाह हो गया। चित्रगति रत्नावती के साथ सांसारिक सुख का भोग करते हुए धर्म-ध्यान भी करने लगे।

इधर धनदेव और धनदत्त के जीव भी स्वर्ग से च्युत होकर चक्री सूर के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। चित्रगति अपने इन दोनों अनुज मनोगति और चपलगति से खूब प्रेम करते थे। उनके बड़े होने पर चित्रगति पत्नी रत्नावती और दोनों अनुजों के साथ एकबार इन्द्र की भाँति खूब धूमधाम से नन्दीश्वरादि द्वीपों की यात्रा करने गए। वहाँ शाश्वत अर्हतों के सम्मुख उन्होंने साधुओं की सेवा में तत्पर होकर धर्म श्रवण किया।

वहाँ से लौटने पर चक्री सूर ने चित्रगति को सिंहासनारूढ़ कर स्वयं मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और अल्प दिनों के अन्दर ही अक्षय पद मोक्ष प्राप्त किया। चित्रगति भी बहुत सी विद्याएँ अर्जित कर द्वितीय चक्रवर्ती सूर की भाँति ही विद्याधर पतिओं पर अखण्ड आधिपत्य कर राज्य का संचालन करने लगे।

एक बार चित्रगति के एक सामन्त मणिचूड़ की मृत्यु हो गयी। उसके दोनों पुत्र शशि और सुर राज्य के लिए परस्पर युद्ध करने लगे। यह देखकर चित्रगति ने उनके राज्य का दो भाग कर दोनों को दिया और उपदेश देकर उन्हें युद्ध से निरस्त किया। किन्तु कुछ पश्चात् ही हाथियों की तरह परस्पर आक्रमण कर वे दोनों ही विनष्ट हो गए। उदारमना चित्रगति ने जब यह संवाद सुना तो खिन्न मन से सोचने लगे – विषय-लोलुप होकर ये मूर्ख युद्ध करते हैं, मरते हैं और हीन योनि में उत्पन्न होते हैं। यदि वे देह से विगत-स्पृह होकर मुक्ति के लिए ऐसा प्रयास करते तो उन्हें क्या नहीं मिल सकता !

ऐसा सोचकर संसार-भय से भीत चित्रगति ने रत्नावती के गर्भ से उत्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र पुण्डरीक को सिंहासन पर बैठाकर आचार्य दमधर से रत्नावती और दोनों अनुजों सहित दीक्षा ग्रहण कर ली।

दीर्घकाल तक चारित्र का पालन कर पादोपगमन अनशन में मृत्यु वरण कर चित्रगति माहेन्द्रदेव लोक में ऋद्धि सम्पन्न देव रूप में उत्पन्न हुए। रत्नावती और दोनों अनुजो ने भी उसी देवलोक में जन्मग्रहण किया। वे सभी एक साथ स्वर्गीय सुख भोगने लगे।

पश्चिम महाविदेह के पद्म नामक नगर में अमरावती तुल्य सिंहपुर नामक एक नगर था। वहाँ हरिनन्दी नामक एक राजा जनता को आनन्दित और सूर्य-सी प्रभा से अन्य को निष्प्रभ करते हुए राज्य कर रहे थे। उनकी पत्नी

का नाम था प्रिय दर्शना। चन्द्र कौमुदी की तरह उसकी दृष्टि से ही अमृत झर पड़ता था।

महा स्वप्नों द्वारा सूचित होकर चित्रगति का जीव महेन्द्र कल्प से च्युत होकर उसके गर्भ में उत्पन्न हुआ। समय पूर्ण होने पर रानी प्रिय दर्शना ने कल्पतरु के उद्भव स्थल पाण्डुक वन-से प्रिय-दर्शन एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उसका नाम रखा अपराजित। समस्त कलाओं को अधिगत कर क्रमशः वे यौवन को प्राप्त हुए। और मीन ध्वज की आकृति प्राप्त कर लावण्य और गुणों के उदधि तुल्य हो गए।

मन्त्री पुत्र विमलबोध उनके अन्तरंग मित्र थे कारण वे दोनों एक साथ ही खेल-कूद करते, एक साथ ही पढ़ते थे। एक दिन क्रीड़ा करने के लिए वे अश्वारोहण कर नगर से बाहर गए। किन्तु दोनों अश्व अशिक्षित होने के कारण दौड़ते हुए उन्हें महारण्य में ले गए, उन्हें रोका नहीं गया। क्लान्त होकर जब वे दोनों स्वतः रुके, तब वे दोनों एक वृक्ष के नीचे अश्व से उतरे। राजपुत्र अपराजित ने विमलबोध से कहा, 'यदि ये दोनों अश्व हमें यहाँ नहीं लाते तो ऐसा अपरूप दृश्य हम नहीं देख सकते थे। यदि यहाँ आने के लिए माता-पिता की अनुमति चाहते तो विरह वेदना के भय से वे निश्चय ही हमें अनुमति नहीं देते। इसलिए जो कुछ भी हुआ अच्छा ही हुआ यद्यपि अश्व हमें यहाँ ले आए हैं यह अवश्य ही उनके लिए दुःख का कारण होगा। आओ हम लोग घूम फिरकर इस स्थान को देखें और जो हो गया है उसे भूलने की चेष्टा करें।'

मन्त्री पुत्र राज पुत्र की बात का समर्थन करे उसके पूर्व ही 'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहता हुआ एक आदमी वहाँ आया। वह भय से काँप रहा था। उसके नेत्रों की दृष्टि उद्भ्रान्त-सी हो गयी थी। राजकुमार उसे आश्वासन देते हुए बोले, 'डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' यह सुनकर मन्त्री पुत्र बोला, 'बन्धुवर, बिना बिचारे आपने यह कह तो दिया, यदि यह अपराधी निकला तो क्या रक्षा करना उचित होगा?'

प्रत्युत्तर में अपराजित ने स्थिर कण्ठ से कहा 'यह अपराधी हो या नहीं शरणागत की रक्षा करना ही हमारा धर्म है।'

राजकुमार के अपना कथन पूर्ण करने के पूर्व ही उसके पीछे-पीछे हाथ में नग्न तलवार लिए—'मारो मारो' कहते हुए आरक्षक वहाँ पहुँचे। कुछ दूर से ही वे बोल उठे, 'पथिक, आप लोग हट जाएँ, हमलोग उसकी हत्या करेंगे

कारण वह नगर को लूटता है, वह चोर है। यह सुनकर अपराजित हँसते हुए बोले; 'चोर हो या और कुछ—इस समय उसने हमारी शरण ली है। ऐसी स्थिति में औरों का तो कहना ही क्या, स्वयं शक्र भी उसको नहीं मार सकते।'

यह सुनकर आरक्षकगण क्रुद्ध होकर जब उसे मारने लगे तो अपराजित ने तलवार हाथ में लेकर उन्हें उसी प्रकार पराभूत कर दिया जिस प्रकार सिंह हरिण को पराभूत कर देता है। पराभूत होकर वे दौड़कर अपने प्रभु कोशल राज के पास जाकर सब कुछ निवेदन किया। तब राजा ने चोर के रक्षकों को पकड़ने के लिए सेना भेजी। अपराजित ने उस सेना को भी पराजित कर दिया। तब राजा स्वयं अपनी अश्व व हस्ती-वाहिनी लेकर वहाँ उपस्थित हुए। यह देखकर अपराजित ने चोर को मन्त्री-पुत्र के हाथों सौंपकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए।

शत्रु सैन्य में प्रवेश कर अपराजित ने प्रारम्भ में ही सिंह की तरह एक हाथी के दाँत पर पैर रखकर उसके कुम्भ पर चढ़ गए और उसके आरोही की हत्या कर उस हाथी पर बैठकर युद्ध करने लगे। कोशल राज के एक मन्त्री ने जब उन्हें देखा तो वह पहचान गया और राजा से जब यह बात कही तो उन्होंने युद्ध बन्द कर दिया और उसके सम्मुख आकर बोले, 'पुत्र, तुम मेरे मित्र हरिनन्दी के पुत्र हो। ऐसा नहीं होता तो भला ऐसा बल और साहस अन्य किसका हो सकता था! सिंह शावक के सिवाय भला क्या अन्य कोई हस्ती से स्पर्द्धा कर सकता था! हे वीर; सौभाग्यवश ही तुम अपने घर से मेरे घर आकर उपस्थित हुए हो। ऐसा कहकर कोशल राजा ने उन्हें आलिंगन में ले लिया और लज्जित राजकुमार को अपने हस्ती-पृष्ठ पर चढ़ाकर पुत्र की तरह अपनी राजधानी में ले गए। मंत्री पुत्र भी चोर को छोड़ कर अपराजित का अनुसरण करते हुए कोशल देश की राजधानी में गए और दोनों ही कोशल राजा का आतिथ्य ग्रहण कर वहाँ रहने लगे।

[क्रमशः

संकलन

॥ पर्युषण पर्वाधिराज और हम ॥

आजकल तपस्या के नाम पर एक नई प्रवृत्ति चल पड़ी है। तपस्वी तो स्वाद विजय कर मुख्य रूप से अनशन करता है, भूखा रहता है, अपनी भोग वृत्तियों पर नियन्त्रण करता है पर पारणे के दिन या उसके बाद बड़ा भोज किया जाता है। ऐसा लगता है कि जैसे किसी के विवाह पर आशीर्वाद समारोह और प्रीतिभोज हो। यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और इसमें एक प्रकार से प्रतिस्पर्द्धा चल रही है। यह कैसी विडम्बना है कि जो तपस्वी भूखा रहा है उसके बाद हजारों लोगों को माल-मिष्टान्न खिलाया जाता है। होना तो यह चाहिए कि पारणे के दिन तपस्वी भाई बहिन से प्रेरणा लेकर लोग स्वयं व्रत, उपवास करें।

तपस्वी भाई-बहिनों का बड़े ठाठ-बाट से जुलूस भी निकाला जाता है जैसे शादी पर वर यात्रा निकलती है। उसे विभिन्न प्रकार की मालाओं से लाद दिया जाता है। तपस्या का मूल लक्ष्य अन्तर्मुखी होना है। जुलूस आदि के प्रसंग उसे बहिर्मुखी बनाते हैं। इससे तपस्या का मूल लक्ष्य अपने स्वभाव में रमण करना बाधित होता है।

—डॉ॰ नरेन्द्र भानावत

जिनवाणी, अगस्त १९९३

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

शोधादर्श || जुलाई १९९३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन कला : एक सर्वेक्षणात्मक परिचय' (डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी), 'आकाश द्रव्य : एक विवेचन' (डॉ० रजन कुमार), 'महोपाध्याय समय सुन्दर जीवन वृत्त' (राकेश पाण्डेय), 'पं० देवीदास नायजी कृत 'प्रवचन सार' (कुन्दनलाल जैन), 'दिगम्बर जैन सैतवाल समाज के प्रति आचार्य समन्तभद्र महाराज का योगदान' (जमनालाल जैन), 'बुढ़ेले' (रामजीत जैन), 'पवाया के प्रेक्षा-गृह' (अभय प्रकाश जैन), 'शिव का सही स्वरूप' (मनोज कुमार जैन), 'जैन धर्म आधुनिक परिप्रेक्ष्य में' (डॉ० प्रेम कुमारी जोशी), 'Non-Violence in Action' (Dr. Sashikant).

श्रमण || अक्टूबर-दिसम्बर १९९२

इस अंक में है 'जैन धर्म और आधुनिक विज्ञान' (डॉ० सागरमल जैन), 'प्रागैतिहासिक भारत में सामाजिक मूल्य और परम्पराएँ' (डॉ० जगदीश चन्द्र जैन), 'जैन एवं बौद्ध दर्शन में प्रमाण विवेचन' (डॉ० धर्मचन्द जैन), 'क्षेत्रज्ञ' शब्द का स्वीकार्य प्राचीनतम अर्धमागधी रूप' (डॉ० के० आर० चन्द्र), 'अष्टपाहुड की प्राचीन टीकाएँ' (डॉ० महेन्द्र कुमार जैन), 'पुर्णिमागच्छ—प्रधान शाखा अपर नाम ढंढेरिया शाखा का संक्षिप्त इतिहास' (शिव प्रसाद), 'जैन दार्शनिक साहित्य में ईश्वरवाद की समालोचना' (मंजुला भट्टाचार्य)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : Off. 21039
Res. 21174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :
BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330

Vol. XVII No. 6 TITTHAYARA October 1993

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77